© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 06 | July - September 2018

श्री मद् भगवत गीता में वर्णित 'आत्म–संयम' का स्वरूप

श्री जयपाल सिंह राजपूत[1] , बबीता[2]
Assi. Professor Department of Yog Science, CRSU, Jind
M.A Yog Student, Roll No. 3231, Department of Yog Science, CRSU, Jind

शोध सार–इसांन अपना वो चेहरा तो खूब सजाता है,
जिस पर लोगो की नजर होती है।
मगर आत्मा को सजाने की कोशिश कोई नही करता,
जिस पर परमात्मा की नजर होती है।

परमात्मा ने सृष्टी की रचना कब और कितने वर्षो पहले की इस बारे स्पष्ट नहीं कहा जा सकता, परन्तु सृष्टि की रचना क्योकि इस बारे मे हमारे देश के महान ऋषि– मुनियो और संत महापुरूषो द्वारा बतलाया गया है कि इस संसार की उत्पति परमात्मा ने अपनी इच्छा से की है ताकि वह (परमात्मा) एक से अनेक हो सके। इस संसार का सबसे अमूल्य प्राणी मनुष्य को बनाकर इस धरती पर भेजा। परमात्मा ने मनुष्य को सबसे ज्यादा विवेक बुद्वि दी कि वह आत्मिक चितंन करता हुआ मोक्ष प्राप्त करके अपनी आत्मा को परमात्मा मे विलिन (एकाकार) कर सके।

श्री कृष्ण जी कहते है

शरीर, इन्द्रिया और मन की भली भाँति अपने वश मे कर लेना है इन को जीतना है। विवेक पूर्वक अभ्यास और वैराग्य के द्वारा ये वश में हो सकता है, परमात्मा की प्राप्ति के मनुष्य जिन साधनो मे अपने शरीर, इन्द्रिया और मन को लगाना चाहे उनमे जब वे अनायास ही लग जाए और इसके लक्ष्य से विपरित मार्ग की और ताके ही नही, तब समझना चाहिए कि ये वश मे हो चुके है। जिस मनुष्य के शरीर, इन्द्रिय और मन वश मे हो जाते है वह अनायास ह संसार समुद्र से अपना उद्वार कर लेता है एंव परमानन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करके कृतार्थ हो जाता है, इसलिए वह स्वयं अपना मित्र है।

शरीर, इन्द्रिय और मन–इन सबका नाम आत्मा है। ये सब जिसके अपने नही है व विपरित कार्य में लगे रहते है, जो इन सबको अपने लक्ष्य के अनुकूल इच्छानुसार कल्याण के साधन में नही लगा सकता वह 'अनात्मा' है– भाव आत्मवान नही है। ऐसा मनुष्य स्वंय मन, इन्द्रिया आदि के वश होकर कुपध्य करने वाल रोगी की भाँती अपने ही कल्याण साधन के विपरित आचरण करता है। वह अदृता, ममता, राग–द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह पाप कर्मो के कठिन बन्धन में पड जाता है। जैसे शत्रु किसी को सुख के साधन से वचिंत करके दुख भोगने को बाध्य करता है, वैसे ही वह अपने शरीर इन्द्रिय और मन को कल्याण के साधन मे न लगाकर भोगो मे लगाता है तथा अपने आपको बार–2 नरकादि मे डालकर और नाना प्रकार की योनियो मे भरकाकर अनन्त काल तक भीषण दुख भोगने के लिए बाध्य करता है। यधपि अपने–आप में किसी का द्वेष न होने के कारण वास्तव मे कोई भी अपना बुरा नही चाहता, तथापि अज्ञान विमोहित मनुष्य आसक्ति के वश होकर दुख को सुख और अहित को हित समझकर अपने याथार्थ कल्याण के विपरित आचरण करने लगता है।

भूमिका– हमारी भारतीय संस्कति के इतिहास में 'महाभारत' एक महान रचना है। महाभारत की रचना वेद व्यास जी ने की थी। महाभारत के 18 पर्व है। जिस मे से छठा पर्व भीष्म पर्व है। भीष्म पर्व के 25 से 42 अध्याय तक श्री मद् भगवत गीता का वर्णन किया गया है। इन 18 अध्यायो मे श्री मद् भगवत गीता से 6 वा अध्याय है, 'आत्म संयम योग' जिसके श्लोको की संख्या है 47।

अर्थ–'आत्म संयम योग'

श्री मद् भगवत गीता के अनुसार ध्यानयोग में शरीर इन्द्रिय, मन और बुद्वि का संयम करना परम आवश्यक है। तथा शरीर इन्द्रिया, मन और बुद्वि–इन सबको आत्मा के नाम से कहा जाता है और इस अध्याय मे इन्ही के संयम का विशेष वर्णन है इसलिए इस अध्याय का नाम'आत्म-संयम योग रखा गया है

भगवान श्री कृष्ण कहते है, कि एक मनुष्य को अपने शरीर, बुद्वि, इन्द्रियो से ऊपर उठकर समता का भाव प्राप्त करले, वो सबसे उत्तम स्थिति है। यह समता का भाव ही हमारे मन आए हुए द्वन्द्वों को दूर कर देता है। अतः जो समता का उद्देश्य रखकर मन इन्द्रियो से संयम पूर्वक परमात्मा का ध्यान करता है। उसकी सभी प्राणीयो मे सम्बुद्वि हो जाती है अर्थात वह क्षमता का भाव प्राप्त कर लेता है जो ऐसा भाव प्राप्त कर लेता है वह परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

आगे श्री कृष्ण जी कहते है जिसने मन और इन्द्रियो सहित शरीर को जीत लिया है, वह आप ही अपना मित्र है, इस बात को स्पष्ट करने के लिए अब शरीर, इन्द्रिय और मनरूप आत्मा को वश मे करने का फल बतलाते है, किसी भी अनुकूल या प्रतिकूल पदार्थ, भाव, व्यक्ति या घटना का सयोग या वियोग होने पर अन्तः करण राग, द्वेष, हर्ष, शोक, इच्छा, भय, ईर्ष्या, काम क्रोध और विक्षेपादि किसी प्रकार का कोई विकार न हो हर हालत मे सदा ही चित सम और शान्त रहे, इसी को 'शीतोष्ण' सुख दुख और मान–अपमान मे चित की वृतियो का भली भाँति शान्त रहना कहते है। शरीर, इन्द्रिय, मन को जिसने पूर्ण रूप से अपने वश मे कर लिया है, उसका नाम जितात्मा है, ऐसा पुरूष सदा सर्वदा सभी अवस्थाओ मे प्रशान्त या निर्विकार रह सकता है और संसार समुद्र से उपना उद्वार करके परमात्मा को प्राप्त कर सकता है, इसलिए वह स्वंय अपना मित्र है। 6/6, 6/7

इस लोक और परलोक के भोग्य पदार्थ की जो किसी भी अवस्था मे, किसी प्रकार भी बिल्कुल भी इच्छा या अपेक्षा नही करता वह 'निराशी' है। भोग साम्रग्री के सग्रह का नाम परिग्रह है, जो उससे रहित हो उसे 'अपरिग्रह' कहते है। वह यदि गृहस्थ हो तो किसी भी वस्तु का ममता पूर्वक सग्रह न रखे और यदि ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ या सन्यासी हो तो स्वरूप से भी किसी प्रकार का 'शास्त्र प्रतिकूल सग्रह न करे। ऐसे पुरूष किसी भी आश्रम वाले हो 'अपरिग्रह' ही है। श्री कृष्ण ध्यानयोग मे लगने के लिए कहते हुए है कि बहुत से मनुष्य के समूह मे तो ध्यान का अभ्यास अत्यन्त कठिन है ही, एक भी दूसरे पुरूष का रहना बातचीत आदि निमित से ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। आत्मा शब्द को परमात्मा मे तन्मय कर देना ही उसको परमात्मा मे लगाना है। 6/10

श्री कृष्ण जी कहते है 'यद्यपि' परमात्मा तपस्वी, ज्ञानी और कर्मी आदि सभी प्यारे है और इन सबसे भी वे योगी परमात्मा को अधिक प्यारे है जो परमात्मा की प्राप्ति के लिए साधना करते है। परन्तु जो परमात्मा समग्र रूप को जानकर मुझसे अनन्य प्रेम करता है, केवल परमात्मा ही अपना परम प्रमास्पद मानकर किसी बात की अपेक्षा, आकांशा और परवा न रखकर अपने अन्तरात्मा को दिन–रात परमात्मा मे ही लगाए रखता है, मातृ परायण शिशु की भाँति जो परमात्मा छोड कर और किसी को जानता ही नहीं वह तो परमात्मा हृदय का परम धन है। अत्यंत स्नेह से जिसका हृदय परिपूर्ण है जिसको दिन–रात अपने प्यारे

बच्चे की और देखते रहते ही नित्य नया आनन्द मिलता है ऐसी वात्सल्य स्नेहमयी अनन्त माताओ के हृदय मेरे जिस अचिन्तयानन्त प्रेममय हृदय सागर की एक बूद के बराबर भी नही है, उसी अपने हृदय से परमात्मा मे उसकी ओर देखता रहता है और उसकी प्रत्येक चेष्टा परमात्मा को आपार सुख पहुचाने वाली होती है। इसलिए श्री कृष्ण जी के लिए वही सर्वोतम भक्त है और वही सर्वोतम योगी है।

6/45, 6/47

पांतजल योग सूत्र में भी आत्म संयम के बारे मे बताया गया है। पांतजल योग सूत्र में यम–नियम और प्रत्याहार के रूप मे वर्णन किया गया है।

महर्षि पतंजलि जी ने साधनपाद में प्रत्याहार का वर्णन किया है। प्रत्याहार दो शब्दो से प्रति–आहार जिसका अर्थ है इन्द्रियो को विषयो से हटाकर अंतमुखी बनाना क्याकि इन्द्रियो का विषय से सम्पूर्ण होने पर विषया शक्ति की भावना जाग जाती है, और इससे स्वंय को बचा लिया जाता है। इन्द्रियो से परे मन है, मन से परे बुद्वि है और बुद्वि से परे परमात्मा अंश आत्मा है। इन्द्रियो का सदुपयोग करना आ जाए तब भी प्रत्याहार की साधना हो जाती है। जैसे परमात्मा के चित अथवा मुर्ति का अवलोकन करे। उनकी मनमोहक छवि को निहारे। परमात्मा के नाम गुण लीला भजन, किर्तन आदि का गान करे और उनका श्रवण करे। इस तरह यदि इन्द्रियो का सही प्रयोग कर लिया जाए तो इन्द्रिया अपने वश में हो जाती है यदि साधक सोच ले जिस मुख से मै परमात्मा के नाम का वर्णन करता हू उस मुख से दूसरो को अपशब्द नही कहूगा, भददे शब्दो का प्रयोग नही करूगा। ऐसा करने से ही जिह्वा रूपी इन्द्रि अपने वश मे हो जाऐगी। महर्षि पंतजलि ने आत्म संयम के लिए यम–नियम के पालन पर विशेष जोर दिया है। 2/54, 2/55

यम

1. अहिसा–मन, वणी और शरीर से किसी प्राणी को कभी किसी प्रकार किचिन्मात्र भी दुखः न देना अहिसां है। 2/35
2. सत्य– इन्द्रिय और मन से प्रत्यक्ष देखकर सुनकर या अनुमान करके जैसा अनुभव किया हो, ठीक वैसा का वैसा ही भाव प्रकट करने के लिए प्रिय और हितकर तथा दूसरे का उद्देश्य उत्पन न करने वाल जो वचन बोने जाते है उनका नाम सत्य है। 2/36
3. अस्तेय – दूसरे के स्वत्व का अपहरण करना, छलसे या अन्य किसी उपाय से अन्याय पूर्वक अपना बना लेना तेय (चारी) है इसमे सरकार की टैक्स की चोरी और घूसखोरी भी सम्मिलित है, इन सब प्रकार की चोरियो के अभाव का नाम अस्तेय है। 2/37
4. ब्रह्मचार्य– मन–वाणी और शरीर से होने वाले सब प्रकार के मैथुनो का सब अवस्थाओ मे सदा त्याग करके सब प्रकार से वीर्य की रक्षा करना ब्रह्मचर्य है। 2/38
5. अपरिग्रह – अपने स्वार्थ के लिए ममता पूर्वक धन, सम्पति और भोग साम्रगी का संचय करना परिग्रह है इसके अभाव का नाम 'अपरिग्रह' है। 2/39

नियमः–

1. **शौच** – जल मृत्रिकादि के द्वारा शरीर, वस्त्र और मकान आदि के मल को दूर करना बाहर की शुद्वि है, जप, तप और शुद्व विचारो के द्वारा एंव मैत्री आदि की भावना से अन्तः करण के राग–द्वेषादि मलो का नाश करना भीतर की पवित्रता है। 2/40
2. **संतोष**– कर्त्तव्य कर्म का पालन करते हुए उसका जो कुछ परिणाम हो तथा प्रारब्ध के अनुसार अपने आप जो कुछ भी प्राप्त हो एंव जिस अवस्था और परिस्थिति मे रहने का

सयोग प्राप्त हो जाए, उसी मे संतुष्ट रहना और किसी प्रकार की भी कामना या तृष्णा न करना 'संतोष' है। 2/42

3. **तप** – अपने वर्ण, आश्रम, परिस्थिति और योग्यता के अनुसार स्वधर्म पालन करना और उसके पालन मे जो शारीरिक या मानसिक अधिक से अधिक कष्ट प्राप्त हो, उसे सहर्ष सहना करना ही तप है। 2/43

4. **स्वाध्याय'** – जिनसे अपने कर्त्तव्य–आकर्तव्य बोध को सके, ऐसे वेद, शास्त्र, महापुरूषो के लेख आदि का पठन–पाठन और भगवान के ओम–कार आदि किसी नाम का या गायत्री का और किसी भी इष्टदेवता के मन्त्र का जप करना 'स्वाध्याय' है। 2/44

5. **ईश्वर** – प्रणिधान–ईश्वर के शरणापन्न हो जाने का नाम ईश्वर प्रविधान है। उसके नाम, रूप, लीला, धाम, गुण और प्रभाव आदि का श्रवण, कीर्तन और मनन करना, समस्त कर्मो को भगवान के सर्म्पण कर देना, अपने को भगवान के हाथ का यन्त्र बनाकर जिस प्रकार वह नचावे, वैसे ही नाचना, उसकी आज्ञा का पालन करना, उसी मे अनन्य प्रेम करना। 2/45

निष्कर्ष – सक्षेप रूप मे हम कह सकते है के यम–नियम और प्रत्याहार का पालन करके ही हम आत्म संयम के रास्ते पर चल सकते है।

वर्तमान समय मे यह आवश्यक हो गया है कि हम अपने आने वाली पीढ़ी को यम–नियम का पाठ पढ़ाकर उन्हे आत्म संयम के पालन करने का महत्व समझा सके। ताकि आतंक, हत्या, चोरी, डकैती, बलात्कार जैसी सामाजिक बुराईयो को जड से खत्म करके हमारे भारत देश के गौरव और मान–सम्मान को बढ़ा सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- **जयदयाल गोयन्दका**

1	श्रीमद् भगवत गीता	श्लोक न0	6/6
2	श्रीमद् भगवत गीता	श्लोक न0	6/7
3	श्रीमद् भगवत गीता	श्लोक न0	6/10
4	श्रीमद् भगवत गीता	श्लोक न0	6/45
5	श्रीमद् भगवत गीता	श्लोक न0	6/47

- **डा0 इन्द्राणी**

6	पातंजल योग सूत्र	सूत्र संख्या	2/54
7.	पातंजल योग सूत्र	सूत्र संख्या	2/55
8	पातंजल योग सूत्र	सूत्र संख्या	2/35
9	पातंजल योग सूत्र	सूत्र संख्या	2/36
10	पातंजल योग सूत्र	सूत्र संख्या	2/37
11	पातंजल योग सूत्र	सूत्र संख्या	2/38
12	पातंजल योग सूत्र	सूत्र संख्या	2/39
13	पातंजल योग सूत्र	सूत्र संख्या	2/40
14	पातंजल योग सूत्र	सूत्र संख्या	2/42
15	पातंजल योग सूत्र	सूत्र संख्या	2/43
16	पातंजल योग सूत्र	सूत्र संख्या	2/44
17	पातंजल योग सूत्र	सूत्र संख्या	2/45